● प्रो. रवीन्द्रनाथ मिश्र

# अष्टभुजा शुक्ल की लोकधर्मी काव्यसंवेदना

अंतिम दशक के हिंदी कवियों में अष्टभुजा शुक्ल ने व्यक्ति और सर्जक के रूप में अपनी एक ठेठ गंवई पहचान बनाई। ग्राम्यजीवन से जुड़ी रचनाओं में इन्होंने लोकजीवन के छुए-अनछुए विषयों के साथ-साथ अपने समय के प्रखर युगबोधीय विचारों को भी गहरी संवेदना के साथ व्यक्त किया है। काव्यरूप की पुरानी परंपरा को जीवंत बनाते हुए उन्होंन लोकजीवन की विभिन्न छवियों को विचार, भाव, भाषा के धरातल पर प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से नई अर्थवत्ता प्रदान की है। अष्टभुजा शुक्ल के रहन-सहन, खान-पान, विचार-भाव, भाषा-बोली आदि में उनका ठेठ गांव झलकता है। फिर भी वैचारिक धरातल पर वे बड़े क्रांतिकारी हैं। हमारी मुलाकात उनसे 29-30 सितम्बर 2007 को गोवा में आयोजित एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में हुई। जब मैंने उनसे बातों-बातों में अपने प्रकल्प कार्य के विषय में बात की तो उन्होंने कहा "देखा मिसिर तू हमसे कहत हया की ई लिखि कै भेज देया, ऊ लिखि कै भेज देया। तू ना जानत की हम निपट गांव में रहित है। हमरे ऊपर कितनी जिम्मेदारी बाय, ऊं हमही जानीला। अब तूं गोवा में हया तोहैं गांवघर के झंझट से मतलब नाय बा। लेकिन हम ईहूं देखत हयी कि तू इहां-ऊंहा भागल करयला और दुनिया भर कै फरफंद में फंसल हया। थोड़ा अपने लिए भी समय निकाला। तूं हमैं दूइ–तीन दिन से गेस्ट हाउस में अकेले छोड़ देहला हम उहां पलिहरे कै बानर होइ गए। जा मरदवा तूं गजब बाटा।"

अष्टभुजा शुक्ल के उक्त कथन से उनकी सादगी और सरलता का पता चलता है। शुक्ल की प्रत्यक्षानुभूति में उनकी काव्यानुभूति अंतर्निहित है। जिसमें उनके विचार, भाव और संवेदना का संश्लिष्ट रूप विद्यमान है, जिसे कि वे ठेठ लहजे में देशज भाषा और मुहावरों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। अष्टभुजा शुक्ल के फक्कड़ स्वभाव, अक्कड़ विचारों और काव्य-लेखन में हमें कबीर, निराला और नागार्जुन के व्यक्तित्व और कृतित्व की झलक दिखाई देती है। 1958 में उत्तरप्रदेश के जनपद बस्ती, गांव दीक्षापार में जन्मे अष्टभुजा शुक्ल वहीं के स्थानीय तुलसीदास संस्कृत महाविद्यालय, चित्राखोर बरहुआ (बनकटी) में संस्कृत प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। मध्यवर्गीय पारिवारिक

जीवन की अनेक समस्याओं और जिम्मेदारियों का वहन करते हुए शुक्लजी काव्यसर्जन में निरत हैं। देश की लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में पिछले दो दशक से उनकी कविताएँ और कुछ में आलोचाएँ प्रकाशित हो रही हैं। 1998 में परिवेश और सृजन सम्मान प्राप्त अष्टभुजा शुक्ल के 'मिठउवा' नामक एक ललित निबंध-संग्रह और 'पद-कुपद' (1997), 'चैत के बादल' (1999), 'दुःस्वप्न भी आते हैं (2004) तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

कवि ने अपने प्रथम काव्य-संग्रह से हिंदी कविता की गद्यात्मक जकड़बंदी को तोड़ते हुए ग्राम्य लोकसंवेदना और लोकभाषा को जीवंत रूप प्रदान किया। वे अपने अनुभव को बिना किसी लाग-लपेट के साफ ढंग से कहते हैं। उनके ग्राम्य बोध में राजनीति,धर्म, कला, नगरीय बोध, साहित्यिक हलचल आदि सबकुछ विद्यमान है। 'पद-कुपद' काव्य-संग्रह की पहली रचना में जहां आलोचकों पर तीखा प्रहार है, वहीं पर दूसरी रचना में कवियों की आत्मप्रशंसा पर करारा व्यंग्य है—

*भज आलोचक, भज आलोचक*
*रे कवि! शरणागत बनकर जा, वह तेरा दुःख मोचक।*

.....

*वह कह दे तो कवियों के कवि, वह कह दे तो आलू।*
*उसकी वाणी आप्तवाक्य है, उसकी टीका चालू॥*
*अष्टभुजा-तू चलता ही जा, बदल न अपनी चाल।*
*दिल्ली है कविता का नैहर तो बस्ती ससुराल॥*[1]

परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं 'अष्टभुजा अपने अनुभव को बहुत साफ ढंग से कहते हैं। त्रिलोचन की तरह। कभी इतने साफ ढंग से कि पहले के ठेठ इतिवृत्तधर्मी कवि याद आने लगें–याद करें छायावाद से पहले के कवि, जिन्हें यथातथ्यता का कवि कहा जाता था। आज कौन दूसरा कवि इस मुहावरे में लिखना चाहेगा! शायद कोई नहीं। या अपवाद सरीखे एक दो कवि। दोहे और पद तो औरों ने भी लिखें हैं पर इतनी गहन अंतर्वेदना या जीवन-मर्म और राजनीतिक समीक्षात्मक विवेक के साथ नहीं। अष्टभुजा का दुःख कबीर का-सा दुःख है भीतर-बाहर बिंधा हुआ। देर तक झंकृत होने वाला दुःख। गृहस्थ जीवन के राग में भी यह अनजाना दुःख रचा-बसा है।''[2]

अष्टभुजा शुक्ल की सामाजिक निर्भीकता, जीवन की सत्यता और अनुभव की प्रामाणिकता का स्वर कबीर के 'कबीरा खड़ा बाज़ार में' और 'आंखिन की देखी' से मिलता-जुलता है। यहां कवि न्यायालय की भाषा-शैली के अंदाज में कहता है—

*वही कहूंगा जो सच होगा।*
*ताख को ताख, जूस को जूसै, छल-प्रपंच को पोंगा॥*

*चिल्लाऊंगा चौराहों पर जो कुछ देखा, भोगा।*
*पुरस्कार, पद, लोभ, लाभ यह सब कागज का ठोंगा॥*
*बचे हुए दिन बिता ही लूंगा जैसे तैसे रो-गा।*
*नंगा रहकर, पागल बनकर, पकड़े सच का टोंगा॥*
*अष्टभुजा सड़कों पर उतरा जो होगा, सो होगा॥*[3]

लोक समाज और संस्कृति के चितेरे शुक्लजी उत्तर आधुनिकता, बाज़ारवाद, पूंजीवाद, राजनीतिक शतरंजबाजी षड्यंत्र, अवसरवादिता, दिखावटीपन आदि से भलीभांति परिचित हैं।

*मुंह में राम, बगल में छूरी, पहले पीयर बाना।*
*जाति धर्म पर खून-खराबा करते उखमज नाना॥*
*नेता, तस्कर से प्रधान तक सब मौसेरे भाई।*
*हम सूखी रोटी को तरसें, उनके लिए मलाई॥*
*पांच वर्ष पर जुटें मदारी, खेल करें बहुरंगा।*
*करि-करि मरें बैल सब हांफे, बैठे खायं तुरंगा॥*[4]

कवि की लोकसंवेदना ग्राम्य जीवन के विविध स्तरों तक फैली हुई है। इसके साथ ही उसके पास ठेठ लोक भाषा के शब्दा का अद्भुत भंडार है। वे ठेठ शब्दों का प्रयोग बिना किसी हिचक के करते हैं और उनमें एक नई आभा भर देते हैं—

*कविजन खोज रहे अमराई।*
*जनता मरे, मिटे या डूबे इनने ख्याति कमाई॥*
*शब्दों का माठा मथ-मथकर कविता को खट्टाते।*
*और प्रशंसा के मक्खन कवि चाट-चाट रह जाते॥*[5]

शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी लिखते हैं—"शब्दों का माथा मथ-मथकर कविता को खट्टाने की बात करना अष्टभुजा के काव्य-विवेक और काव्यभाषा के प्रति उनके दायित्व को ही सूचित करता है।"[6] कवि की विशेषता इस बात में है कि वह प्रकृति एवं ग्राम्यजीवन के उपादानों के माध्यम से समसामयिक सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों को जोड़ देता है। "लूटन, लूट रहे संसारा। एक घोटाले में करोड़ का करते वारा-न्यारा॥" जैसी पंक्तियों के माध्यम से वे राजनेताओं की काली करतूतों और भ्रष्टाचार एवं घोटालों में लगे लोगों पर आक्रोश व्यक्त करते हैं। अष्टभुजा शुक्ल के 'पद-कुपद' संग्रह की 49 कविताएं विभिन्न भावबोधों, स्थितियों और मनोवृत्तियों पर आधारित हैं। उनमें जहां एक ओर सामाजिक जीवन की सोच, दर्द, अविश्वास, स्वार्थ लोलुपता, हृदय की कलुषता, अहंकार, नारी-जीवन की त्रासदी, पंडे-पुजारियों की शोषण-प्रवृत्ति, दहेज प्रथा की क्रूरता, अनमेल विवाह की पीड़ा, अपनी धरती के प्रति लगाव, खेत-खलिहान, प्रकृति के नाना रूपों आदि का

चित्रण किया गया है, वहीं पर राजनीतिक एवं नगरीय जीवन तथा समसामयिक युगबोधीय स्वरों को भी प्रखरता से उभारा गया है। लोक संस्कृति और युगबोधीय कथ्य पर आधारित ठेठ अवधी ग्रामांचल भाषा एवं परंपरागत पद्यात्मक रूप में लिखा गया यह संग्रह अंतिम दशक की विशिष्ट रचना है। अष्टभुजा शुक्ल के दूसरे काव्य-संग्रह 'चैत के बादल' में उनकी लोकसंवेदना का फलक व्यापक हुआ है। जो कि लोकभाषा के ठेठ शब्दों के प्रयोग से संपुष्ट हुआ है। वस्तुतः वे किसानी जीवन के कवि हैं और इस मायने में नागार्जुन और त्रिलोचन के बहुत करीब हैं। उनके भीतर के दुःख में पासपड़ोस का दुःख छिपा हुआ है। वह कुछ कबीर जैसा प्रतीत होता है क्योंकि उसमें दया, करुणा, प्रेम, बन्धुत्व, सहयोग आदि के साथ विद्रोह, आक्रोश, छटपटाहट, संघर्ष आदि भी है। इसी संग्रह की भूमिका में परमानंद श्रीवास्तव ने लिखा है—''अष्टभुजा शुक्ल उन थोड़े से कवियों में हैं जिन्होंने ठेठ बोली के स्पर्श से जीवित अपने काव्य मुहावरे में आसपास के जीवन और समय को, प्रकृति और जनपद को अपनी भीतर-बाहर की दुनिया को देखने और अभिव्यक्त करने का नया साहस दिखाया है।''[7] प्रस्तुत संग्रह की पहली कविता 'गणित के कुछ प्रश्न' के माध्यम से कवि जातिवाद, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक हिंसा, अपहरण, आतंकवाद आदि तात्कालिक समस्याओं को एक अनूठी शैली में व्यक्त करता है।

*किसी धर्मस्थल के विवाद में/पांच हजार गोली से/चार हजार गोले से/पांच सौ चाकू से/और चार सौ जलाकर मार डाले जाते हैं/तीन सौ महिलाओं को नाली/और दो सौ बच्चों को बकरा समझा जाता है/धर्म में सहिष्णुता का प्रतिशत ज्ञात कीजिए ?*[8]

कवि गांव की निःसन्तान विधवा 'ललकू बहू' के द्वारा हमें बीसवीं सदी के अंत में हो रहे सामाजिक परिवर्तन की एक झलक मिलती है। वह समाज में निराला की विधवा की तरह दीन-हीन बनकर नहीं रहती बल्कि बाज़ार में मिर्चा बेचकर अपना जीवनयापन करती है। समकालीन कवियों में शायद ही किसी ने 'ऊंट', 'किलनें', 'बकरे', 'दांत रहा बाछा', जैसे लोकजीवन से जुड़े शीर्षकों पर कविताएं लिखी होंगी। अष्टभुजा शुक्ल की 'मां', 'पिता' और 'ननदें' पारिवारिक संवेदना की कविताएं हैं।

*''अपने घर की निन्दा, पराये घर की हंसी/उसका प्रिय मुहावरा था/अब नहीं है मां/सपना हो गई है वह/फिर भी सदा आसपास बनी रहती है/सांस-सांस में समाई हुई/हवा-सी।''*[9]

कवि ने मां के संघर्ष, अभाव, दुःख-दैन्य, करुणा, प्रेम, पुरुष वर्चस्व की पीड़ा, जीवन की कशमकश आदि को गहन संवेदनात्मक अनुभूति के साथ लोक मुहावरों एवं ठेठ शब्दों में व्यक्त किया है। रोजमर्रा जीवन में प्रयुक्त ठेठ अवधी के शब्दों का जैसा प्रयोग अष्टभुजा की कविताओं में मिलता है, वैसा अंतिम दशक के अन्य कवियों की रचनाओं में बहुत कम मिलता है। 'तुम्हारा कपड़ा' कविता के संबंध में संग्रह की भूमिका में परमानंद

श्रीवास्तव लिखते हैं—'अष्टभुजा शुक्ल अपने समय का बाज़ार, बाज़ार का भूमण्डलीकरण, आक्रामक सर्वग्रासी उपभोक्तावाद—यह सब देखते-जानते हैं। वे दिखाते हैं कि निर्जीव कपड़ा भी एक दिन अपनी आजादी की जगह खोज या पा लेता है और फिर बिकने से इनकार करता है। कैसे हैं ये जीते-जागते लोग जो आज बाज़ार के चमकीले ग्लैमर के प्रभुत्व वाले समय में दिन-रात बिकने को तैयार बैठे हैं। चोट ऐसे भी की जाती है।''[10] दृष्टान्त, रूपक, प्रतीक ऐसे अनजान ढंग से भी कविता में आते हैं।

*कहां-कहां से कटा होगा कपड़ा/सोचो, कहां-कहां से कटा होगा वह/तुम्हारी बांहों को घेरने की इच्छा लिये हुए/तुम्हारे पसीने में भींगने की कामना संजोए/तुम्हारे दिल की धड़कन सुनने की अभिलाषा पाले।*[11]

अष्टभुजा शुक्ल की ओ रसीले गन्ने, पेड़, खौलते जेठ में, चैत के बादल, सूर्योदय तक, यह डाल, हेमन्त, पक्षी, चिड़िया आदि कविताएं मूलतः निसर्ग के नाना रूपों और क्रिया-कलापों पर केन्द्रित हैं, लेकिन कवि उनमें से कतिपय कविताओं के माध्यम से अपनी निजी एवं समसामयिक अनुभूतियों को भी व्यक्त करता है। 'चैत के बादल' संग्रह की शीर्षक कविता में कवि बादलों और मानवीय वृत्तियों का अद्‌भुत तालमेल प्रस्तुत करता है—

*भरे परसंताप से/ये मिटाने पर उतारू/गरल जैसा जल उगलने ओ विकल/चैत के/इन कामरूपी बादलों को देखकर/याद आते हैं/पौष के पीयूषवर्षी मेघ/जिनका एक लहरा ही/फसल की डीभियों को/फुन्न रखने के लिए/सींक में सद्‌भाव भरने के लिए/दूध से भी अधिक लगता है।*[12]

अष्टभुजा शुक्ल के तीसरे काव्य-संग्रह 'दुःस्वप्न भी आते हैं' का प्रकाशन 2004 में हुआ। यह इनकी रचनाभूमि की प्रौढ़तर कृति है। यहां विचार, भाव, भाषा-शैली की दृष्टि से इनकी रचनाओं में कोई खास बदलाव नहीं आया है। कवि की कविताओं में जीवन-जगत की वैविध्यता के साथ-साथ लोकसंस्कृति और लोकभाषा की मिठास सर्वत्र मौजूद है।

## संदर्भ सूची :


1. अष्टभुजा शुक्ल, पद-कुपद काव्य-संग्रह, पृ. 1
2. परमानंद श्रीवास्तव, कविता का अर्थात्, पृ. 250-251
3-5. अष्टभुजा शुक्ल, पद-कुपद, पृ. 32, 6, 2
6. शैलेन्द्रकुमार त्रिपाठी, सं. सरयूधारा–अंक-23-24, 2006, पृ. 9
7. परमानंद श्रीवास्तव, चैत के बादल काव्य-संग्रह–संपादकीय
8-9. अष्टभुजा शुक्ल, चैत के बादल, पृ. 96-97, 48
10. परमानंद श्रीवास्तव, चैत के बादल–संपादकीय
11-12. अष्टभुजा शुक्ल, चैत के बादल, पृ. 82, 62


❐


अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा-403206